प्रथम अध्याय

प्रेमचंद : जीवन और साहित्य

1.1 जीवनी :

जीवन स्ययं में एक विशद विषय है। अर्थ की दृष्टि से जीवन शब्द अत्याधिक व्यापक है। संपूर्ण संसार जीवन का पर्यायी है। इसकी सीमा में लोक-परलोक, मानव और प्रकृति, चेतन और अचेतन सभी समाए हुए हैं, किन्तु मानव-जीवन ही इन सबसे सर्वाधिक व्यापक है क्योंकि मानव ने अपनी बौद्धिक शक्ति के प्रयोग से अपने जीवन को अधिक प्रभावित बनाकर विश्वव्यापी बना दिया है। जीवन का यह व्यापक रुप अपनी विविधता के कारण समस्त मानवेतर प्राणियों के जीवन से तो सम्बन्धित हो ही गया है, साथ ही यह सृष्टि के अनेक पदार्थों को अपने अन्तर्गत समाविष्ट किये हुए है।

डॉ० देवराज उपाध्याय ने ''जीवन् की व्याख्या करते हुए कहा है कि जीवन बहुत ही गूढ़ है। मनुष्य के सारे कार्य-व्यापार और व्यवहार उसके रहस्योद्‌घाटन के लिए होते हैं।'' [1]

साहित्यकारों ने जीवन को सार्थकता और निरर्थकता की दृष्टि से चिन्तन का विषय बनाया है। वह क्या है ? क्या होना चाहिए ? आदि से ही चिन्तन का अर्थ प्रकट होता है। चिन्तन की दिशा में व्यक्ति नाम सदैव गतिशील रहता है। इस गतिशीलता में ही व्यक्ति के जीवन को अनेक द्वंद्वात्मक प्रक्रिया चलती रहती है। यही संघर्ष और द्वंद्व जीवन को गति प्रदान करते हैं और यही संघर्ष, विश्व को गति प्रदान करते हैं। प्रत्येक व्यक्ति अपने तरीके से संघर्षों का सामना करता है। व्यक्ति की बुद्धि ही उसके क्रिया कलापों और भावनाओं की निर्णायिका होती है। गुलाब राय जी के अनुसार ''लेखक का जीवन के प्रति एक विशेष दृष्टिकोण होता है। उसी दृष्टिकोण से वह जीवन की व्याख्या प्रस्तुत करता है और उसी के अनुकूल उसके विचार होते हैं।'' [2]

हिंदी कथा-साहित्य के सम्राट मुंशी प्रेमचंद मुख्यत: कथाकार के रुप में ही सामने आते हैं। आधुनिक युग-जीवन एवं जन-चेतना की प्रत्येक हिलोर उनके साहित्य में लहरा उठी है। वे हिंदी के न केवल सर्वाधिक पढ़े जाने वाले कथाकार हैं बल्कि भारतीय सामाजिक जीवन को अनेक पहलुओं से उद्‌घाटित और आविष्कृत करने वाले लेखक भी हैं।

1.1.1. जन्म एवं परिवार :

मुंशी प्रेमचंद का जन्म सन 1880 में बनारस के पास लमही गाँव में एक किसान परिवार के घर हुआ था। बहुत से गरीब किसानों की तरह उनके पिता का गुजारा किसानी से न हुआ और उन्होंने नौकरी कर ली। प्रेमचंद के पिता का नाम था अजायब लाल और माता का नाम आनन्दी देवी। जब प्रेमचंद का जन्म हुआ था तब इनके पिता को बीस रुपए तनख्वाह मिलती

थी। जब वे सात साल के थे, तभी उनकी माता का स्वर्गवास हो गया। जब वे पंन्द्रह साल के हुए थे तब उनकी शादी कर दी गई और सोलह साल के होने पर उनके पिता का भी देहांत हो गया।

1.1.2 शिक्षा-दीक्षा :

प्रेमचंद का वास्तविक नाम धनपतराय था। अपनी गरीबी से लड़ते हुए प्रेमचंद ने अपनी पढ़ाई मैट्रिक तक पहुँचाई। जीवन के आरंभ में आप अपने गाँव से दूर बनारस पढ़ने के लिए नंगे पाँव जाया करते थे। इसी बीच पिता का देहान्त हो गया। पढ़ने का शौक था, आगे चलकर वकील बनना चाहते थे। मगर गरीबी ने तोड़ दिया। स्कूल आने-जाने के झंझट से बचने के लिए एक वकील साहब के यहाँ ट्यूशन पकड़ लिया और उसी के घर एक कमरा लेकर रहने लगे। ट्यूशन का पाँच रुपया मिलता था। पाँच रुपये में से तीन रुपये घर वालों को और दो रुपये से अपनी जिन्दगी की गाड़ी को आगे बढ़ाने रहे। इस द़ो रुपये से क्या होता महीना भर तंगी और अभाव का जीवन बिताते थे। इन्ही जीवन की प्रतिकूल परिस्थितियों में मैट्रिक पास किया।[3] उन्होंने स्नातक स्तर तक शिक्षा प्राप्त करके कुछ समय तक अध्यापन किया, कुछ दिनों राजकीय सेवा भी की, किन्तु कालांतर में गांधीजी के असहयोग आंदोलन से प्रेरित होक सरकारी सेवा छोड़ दी और फिर आजीवन स्वतंत्र लेखन ही किया।

1.1.3. विवाह एवं कर्मजीवन :

पंद्रह साल के उम्र में प्रेमचंद का विवाह करा दिया गया था। पत्नी की उम्र प्रेमचंद से बड़ी थी और बदसूरत थी। पत्नी की सूरत और उसके जबान ने आपके जले पर नमक का काम किया। आप स्वयं लिखते हैं, ''उम्र में वह मुझसे ज्यादा थी। जब मैंने उसकी सूरत देखी तो मेरा खून सूख गया .....'' उसके साथ-साथ जबान की भी मीठी न थी। आपने अपनी शादी के फैसले पर पिता के बारे में लिखा है ''पिताजी ने जीवन के अन्तिम सालों में एक ठोकर खाई और स्वयं तो गिरे ही, साथ में मुझे भी डुबो दिया। मेरी शादी बिना सोचे-समझे कर डाली।'' हालांकि आपके पिताजी को भी बाद में इसका एहसास हुआ और काफी अफसोस किया।

विवाह के एक साल बाद ही पिताजी का देहान्त हो गया। अचानक आपके सिर पर पूरे घर का बोझ आ गया। एक साथ पाँच लोगों का खर्चा सहन करना पड़ा। पाँच लोगों में विमाता, उसके दो बच्चे, पत्नी और स्वयं। प्रेमचंद की आर्थिक विपित्तियों का अनुमान इस घटना से लगाया जा सकता है कि पैसे के अभाव में उन्हें अपना कोट बेचना पड़ा और पुस्तकें बेचनी पड़ी। एक दिन ऐसी हालत हो गई कि वे अपनी सारी पुस्तकों को लेकर एक बुकसेलर के

पास पहुँच गए। वहाँ एक हेडमास्टर मिले जिन्होंने आपको अपने स्कूल में अध्यापक पद पर नियुक्त किया।

सन् 1905 में आपकी पहली पत्नी पारिवारिक कटुताओं के कारण घर छोड़कर मायके चली गई फिर वह कभी नहीं आई। विच्छेद के बावजूद कुछ सालों तक वह अपनी पहली पत्नी को खर्चा भेजते रहे। सन् 1905 के अंतिम दिनों में आपने शीवरानी देवी से शादी कर ली। शीवरानी देवी एक विधवा थी और विधवा के प्रति आप सदा स्नेह के पात्र रहे थे।

यह कहा जा सकता है कि दूसरी शादी के पश्चात् आपके जीवन में परिस्थितियां कुछ बदली और आय की आर्थिक तंगी कम हुई। आपके लेखन में अधिक सजगता आई। आपकी पदोन्नति हुई तथा आप स्कूलों के डिप्टी इन्सपेक्टर बना दिये गए। इसी खुशहाली के जमाने में आपकी पाँच कहानियों का संग्रह सोजे वतन प्रकाश में आया। यह संग्रह काफी मशहूर हुआ। [4]

1.1.4. व्यक्तित्व :

किसी भी साहित्यकार की कृतियों में उसके विचारों को समझने के लिए उसका व्यक्तित्व महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। अत: व्यक्तित्व विश्लेषण का उद्देश्य उसके साहित्य में प्रतिविम्बित साहित्यकार की भावनाओं और आदर्शों को समझने में महत्वपूर्ण सहयोग प्रदान करता है। साहित्य का केन्द्र बिन्दु ही साहित्यकार का व्यक्तित्व है। समाज के परिवेश में प्रत्येक व्यक्ति की अपनी स्वतंत्र क्रिया-कलाप की शैली होती है। उसके अपने स्वतंत्र विचार और आदर्श होते हैं। विचार और आदर्शो का यही समन्वय साहित्यकार का अपना व्यक्तित्व होता है और दूसरी ओर साहित्य में निहित उसका अपना दर्शन। नोटमेन. एल. मन के मतानुसार ''वह व्यक्तित्व एक संयोजन सम्मिलन विलयन और संगठित पूर्णता है जिसमें विशिष्ट क्रियायें अपनी अन्विति को एक सम्पूर्ण प्रतिमा में मुक्त करती हैं।'' [5]

प्रेमचंद में विचारों की दृढ़ता चट्टान-जैसी थी। उनके कई मित्रों ने लिखा है कि उन्हें ईश्वर में विश्वास नहीं थी। मृत्यु-शाय्या पर पड़े हुए प्रेमचंद से लोग ईश्वर का स्मरण करने के लिए कहते थे। उन्होंने उस अंतिम रात्रि को जैनेंद्र से कहा था-''जैनेंद्र, लोग ऐसे समय याद किया करते हैं ईश्वर, मुझे भी याद दिलाई जाती है। पर अभी तक मुझे ईश्वर को कष्ट देने की जरुरत नहीं मालूम हुई है।'' [6]

प्रेमचंद अपने जीवन में सदा मस्त रहते थे। वे हमेशा सादा एवं सरल जीवन निर्वाह करते थे। जीवन में मिलनेवाले विषमताओं एवं कटुताओं से वे हमेशा संघर्ष लड़ते थे। वे अपनी जिंदगी में मिलनेवाली प्रतिकुलताओं से हमेशा लड़ते रहे और उसे अपनी जीवन की बाजी मानते हुए हमेशा जीतना चाहते थे।

उन्होंने एक बार मुंशी दयानारायण निगम को एक पत्र में लिखा "हमारा काम तो केवल खेलना, अपने को हार से इस तरह बचाना मानों हम दोनों लोकों की संपत्ति खो बैठेंगे। किन्तु हारने के पश्चात्-पटखनी खाने के बाद, धूल झाड़ खड़े हो जाना चाहिए कि एक बार फिर जैसा सूरदास कह गए हैं, तुम जीते हम हारे। पर फिर लड़ेंगे।" [7]

प्रेमचंद हंसोड़ प्रकृति के थे। सरलता, सौजन्यता और उदारता के वह मूर्ति थे। वे एक उच्चकोटि के मानव थे। वह आडम्बर एवं दिखावा से मीलों दूर रहते थे। जीवन में न तो उनको विलास मिला और न ही उनको इसकी तमन्ना थी। तमाम महापुरुषों की तरह वे अपना काम स्वयं करना पसंद करते थे।

1.1.5. मृत्यु :

सन् 1936 ई० में प्रेमचन्द बीमार रहने लगे। अपने इस बीमार काल में ही आपने "प्रगितिशील लेखक संघ" की स्थापना में सहयोग दिया। "हंस" पत्रिका का सितम्बर, 1936 को स्वयं प्रेमचंद का जीवनदीप सदैव के लिए बुझ गया।

मृत्यु शय्या पर पड़े प्रेमचंद मृत्यु से न डरते थे। उन्हें ईश्वर पर आस्था नहीं था। यह प्रेमचंद का मनुष्यत्व था जो मृत्यु को देखकर मुस्करा रहा था। प्रेमचंद की जीवन-कथा एक दूसरे महान लेखक की याद दिलाती है जिसका जीवन इतने कटु अनुभवों से भरा हुआ था कि उसने अपना नाम ही गोर्की (तिक्त) रख लिया था। जिस साल प्रेमचंद का देहावसान हुआ, उसी साल गोर्की का भी। दोनों की समानताओं का ज़िक्र करते हुए श्री शांतिप्रिय द्विवेदी ने लिखा था- "गोर्की की भाँति ही उन्होंने छुटपन से ही कठिनाईयों की कड़वी-घूँट पी थी। उनका दु:ख ही उनके लिए अमृत बन गया।" [8]

1.2. साहित्य :

साहित्यकार के आन्तरिक मन की चेतना जब उद्बुद्ध होकर मानस के बाहर अभिव्यक्त होना चाहती है तो तब वह शब्दों के संयुक्त वाक्यों में ही अपने स्वरुप को प्रकट करती है। अर्थ की इस सरस एवं चमत्कारिक अभिव्यक्ति को साहित्य कहा जाता है। मानव समाज की सभ्यता एवं सांस्कृतिक अभिव्यक्ति को कायम रखने का प्रमुख साधन यही साहित्य है। व्यक्ति की अपनी शारीरिक रचना नश्वर है किन्तु उसके आदर्शवादी कर्म तथा उसकी आत्मा साहित्य के माध्यम से सदैव अमर रहती है। साहित्य अपने युगीन परिस्थितियों के शब्द चित्रों को ज्यों का त्यों सुरक्षित रखता है। वह न केवल अतीत का परिचायक है वरन् वर्तमान का ज्ञान और भविष्य की सम्भावनाओं को भी सम्मुख उपस्थित करता है। इसी कारण साहित्यकार अपने युग से सम्बंधित परिस्थितियों के नैतिक मूल्यों का समावेश करके ही अपने साहित्य की

सीमा को व्यापक बनाता है। उत्कृष्ट साहित्य का लक्षण ही नैतिक भावनाओं की प्रतिष्ठा एवं लोकमंगल की भावना का समावेश है।

"साहित्य के प्रति आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का मत उल्लेखनीय है। उन्होंने कहा है कि- मैं साहित्य को मनुष्य की दृष्टि से देखने का पक्षपाती हूँ। जो वाग्जाल मनुष्य को दुर्गतिहीनता और परमुखापेक्षिता से बचा न सके, जो उनकी आत्मा को तेजोद्दीप्त न बना सके, उसे साहित्य कहने में मुझे संकोच होता है।" [९]

प्रेमचंद का हिंदी कथा साहित्य में ऐतिहासिक योगदान रहा है। वे जन्मना साहित्य साधन एवं समाज-सुधारक थे। उन्होंने कथा साहित्य के साथ-साथ निबन्ध-लेखन भी किया। उनके निबन्धों का सम्बन्ध भाषा एवं साहित्य-सम्बन्धी उनकी निजी मान्यताओं से है। कथाकार प्रेमचंद का व्यक्तित्व इतना आकर्षित, सहज और प्रभावशाली है कि उनके निबन्धकार को लोग भूल से गये हैं, फिर भी उसका हिंदी-गद्य-साहित्य में स्थायी महत्व है। प्रेमचंद के गद्य-साहित्य में उनके पत्रों का महत्व भी निर्विवाद है। इन पत्रों का सम्पादन करके श्री अमृतराय और मदन गोपाल ने हिन्दी की बहुत बड़ी सेवा की है। इन पत्रों के आधार पर प्रेमचंद के जीवन-संघर्ष और उनके समय की साहित्यिक गतिविधियों को बखूबी समझा जा सकता है। प्रेमचंद एक सफल अनुवादक भी थे तथा पत्रकारिता के क्षेत्र में भी उन्होंने एक कीर्तिमान स्थापित किया था।

1.2.1. लेखकीय जीवन का आरंभ एवं प्रेरणास्त्रोत :

प्रेमचंद हिंदुस्तान की नई राष्ट्रीय और जनवादी चेतना के प्रतिनिधि साहित्यकार थे। जब उन्होंने लिखना शुरु किया था, तब संसार पर पहले महायुद्ध के बादल मँडरा रहे थे। जब मौत ने उनके हाथ से कलम छीन ली, तब दूसरे महायुद्ध की तैयारियाँ हो रही थीं। इस बीच विश्व-मानव-संस्कृति में बहुत से परिवर्तन हुए। इन परिवर्तनों से हिंदुस्तान भी प्रभावित हुआ और उसने उन परिवर्तनों में सहायता भी की। विराट मानव-संस्कृति की धारा में भारतीय जन-संस्कृति की गंगा ने जो कुछ दिया, उसके प्रमाण प्रेमचंद के लगभग एक दर्जन उपन्यास और उनकी सैकड़ों कहानियाँ हैं।

प्रेमचंद की जीवन विषमताओं से घेरे थे। उनके पंद्रह वर्ष होने पर ही पिता ने शादी करवा दी थी। और सोलह साल में पिता स्वर्गवासी हो गये। तो ऐसी स्थिति में जबकि उनका उम्र खेलने-खाने की होती थी; उन्हें अपना घर संभालने की चिंता करनी पड़ी। तब वह सिर्फ नवें दर्जे में पढ़ते थे और उनकी गृहस्थी में दो सौतेले भाई, सौतेली माँ और खुद उनकी पत्नी थीं। क्रिया-कर्मों में साधारण आदमी को किस तरह ठगा जाता है, इसका कड़वा अनुभव प्रेमचंद

को लड़कपन ही में हो गया। सौतेली माँ का व्यवहार, बचपन में शादी, पंडे-पुरोहित का कर्मकांड, किसानों और क्लर्कों का दुखी जीवन-यह सब प्रेमचंद ने सोलह साल की उम्र में ही देख लिया था। इसीलिए उनके ये अनुभव एक जबर्दस्त सच्चाई लिए हुए उनके कथा-साहित्य में झलके उठे थे।

प्रेमचंद गाँव में रहते थे; ट्यूशन करते थे। शहर पढ़ने जाते थे और पाँच मील वापस आकर रात को कुप्पी जलाकर खुद पढ़ने बैठते थे। हाई स्कूल पास करने के बाद कॉलेज में वह तभी भर्ती हो सकते थे जब उनकी फीस माफ़ हो जाए और इसके लिए सिफ़ारिशों की जरूरत थी। इसी समय मेहनत से चूर होकर वह बीमार पड़ गए और दो हफ्ते तक नीम का काढ़ा पीते रहे। बड़ी मुश्किल से कॉलेज में भर्ती हुए और जैसे-तैसे पढ़ाई जारी रखी, लेकिन हिसाब में दो बार फेल हुए। तब इंटर-मिडिएट में गणित एच्छिक विषय न था।

प्रेमचंद तब शहर में रहने लगे। पाँच रुपए का ट्यूशन किया। एक वकील के लड़के को पढ़ाते थे और उसी के अस्तबल के ऊपर एक कच्ची कोठरी में रहा करते थे। खुद खाना पकाते थे, बर्तन धोते थे और उपन्यास पढ़ते थे। कहानियाँ और उपन्यास पढ़ते थे। कहानियाँ और उपन्यास पढ़ने का चस्का उन्हें शायद पहले ही लग चुका था। श्री रघुपति सहाय 'फ़िराक़' ने लिखा है कि उनकी दोस्ती अपने एक ऐसे सहपाठी से हो गई थी जिसका बाप तमाखू बेचता था। तमाखू के पिंडों के पीछे जमकर दोनों दोस्त हुक्का पीते थे और 'तिलिस्म होशरुबा' पढ़ते थे जिसे उर्दू का 'चंद्रकांता' और 'भूतनाथ' समझना चाहिए।

13 साल की उम्र में ही प्रेमचंद मे रतननाथ 'सरशार', मिरज़ा रुसवा और मौलाना शरर के उपन्यासों से परिचय प्राप्त कर लिया था। गोरखपुर के बुद्धिलाल बुकसेलर से कुंजियाँ और नोट्स लेकर वह अपने स्कूल के लड़कों को बेचा करते थे और इसके बदले उसकी दुकान पर उपन्यास पढ़ा करते थे। उर्दू में पुराणों के जो अनुवाद छपे थे, वे भी उन्होंने पढ़ डाले थे। प्रेमचंद में पढ़ने का बेहद चाव था। पढ़ने के रास्ते में जितनी ही ज्यादा कठिनाइयाँ आई, उतना ही पढ़ने के लिए उनका चाव और बढ़ गया। वह कितना पढ़ते थे, इसका अंदाज 'तिलस्मी होशरुबा' के आकार-प्रकार का ध्यान करने से लग जाता है। इसके बारे में उन्होंने खुद लिखा है- ''इस बृहद तिलस्मी ग्रंथ के 17 भाग उस वक्त निकल चुके थे और एक-एक भाग बड़े सुपर रायल के आकार के दो-दो हज़ार पृष्ठों से कम न होगा और इन 17 भागों के उपरांत उसी पुस्तक के अलग-अलग प्रसंगों पर पचासों भाग छप चुके थे।'' ('मेरी पहली रचना')

ये उपन्यास प्रेमचंद के दुखी बचपन के साथी थे। वे मुसीबतों में उन्हें ढाढ़स बँधाते थे और कुछ देर के लिए उन्हें ट्यूशनों, सौतेली माँ और महाजनों की दुनियाँ से दूर ले जाते थे। इन्हें

पढ़ने से उनकी कल्पनाशक्ति प्रखर हुई और खुद भी लिखने की उन्हें प्रेरणा मिली। लेकिन प्रेमचंद ने 'तिलिस्म होशरुबा' का रास्ता नहीं अपनाया। उनकी रचनाएँ भारतेंदु हरिश्चंद, बालकृष्ण भट्ट और राधाकृष्णदास के कथा-साहित्य का अगला और स्वाभाविक कदम थीं।[10]

मुंशी प्रेमचंद निस्सन्देह हिंदी के सर्वश्रेष्ठ उपन्यासकार थे। उन्होंने उत्कृष्ट तो लिखा ही, प्रचुर भी लिखा। वे पहले उर्दू में लिखा करते थे। हिंदी के विशाल पाठक-वर्ग ने उन्हें हिंदी में लिखने के लिए प्रेरित किया। पहले उन्होंने कई कहानियाँ लिखीं। उन्होंने स्नातक स्तर तक शिक्षा प्राप्त करके कुछ समय तक अध्यापक किया, कुछ दिनों राजकीय सेवा भी की, किन्तु कालान्तर में गाँधीजी के असहयोग-आन्दोलन से प्रेरित होकर सरकारी सेवा छोड़ दी और फिर आजीवन स्वतन्त्र लेखन ही किया। वे मूलतः उर्दू के लेखक थे।

1.2.2. युगीन संदर्भ और परिस्थितियाँ :

साहित्यकार के व्यक्तित्व निर्माण एवं उसके बौद्धिक विकास में जितना योग उसकी व्यक्तिगत परिस्थितियों और उसके स्वयं के जीवन का होता है उतना ही उसकी युगीन-परिस्थितियों और सामाजिक वातावरण का भी। 'युग' का तात्पर्य है काल का दीर्घ परिणाम। 'युग' एवं 'काल' एक दूसरे के पर्याय होते हुए भी सूक्ष्म रुप से भिन्न हैं- 'युग' 'काल' का सीमित एवं विशिष्ट अंश है। साहित्य-जगत में 'युग' शब्द अनेकार्थी रहा है किन्तु साहित्य सृजन के सन्दर्भ में यह केवल वर्षो की निश्चित संख्या का बोधक मात्र न होकर उस समय की विशिष्ट विचारधारा का भी बोधक है।

सुमित्रानन्दन पन्त ने कहा है ''प्रत्येक युग की अपनी विशेष विचारधारा, विशेष भावनायें तथा विशिष्ट दृष्टिकोण होता है, जो उस युग के साहित्य में प्रतिफलित होना है।'' [11]

जो साहित्यकार अपने युग का प्रतिनिधि होता है, वही सच्चा साहित्यकार होता है, उसकी वाणी युग-वाणी कही जा सकती है। प्रारम्भिक युग से लेकर आज तक का समस्त साहित्य इसका ज्वलन्त उदाहरण है कि साहित्यकार का अपना साहित्य अपने युगबोध की छाया में पल्लवित होता आया है।

1.2.2.1. पारिवारिक, सामाजिक एवं राजनीतिक प्रभाव :

प्रेमचंन्द ऐसे संक्रमण काल में जन्मे थे कि उस पर जहाँ एक ओर पारिवारिक प्रभाव पड़ा वही सामाजिक प्रभाव भी कम नहीं पड़ा। परिवार में अनेक विषमताओं का उन्हें सामना करना पड़ा। उन्हें न केवल बाल विवाह का सामना करना पड़ा बल्कि अशिक्षित एवं असभ्य महिला से बेमेल विवाह थी करना पड़ा। इस प्रकार उनका प्रारम्भिक जीवन ही बोझ से लट गया और

उसमें किसी प्रकार भी शांति एवं सुख का नाम नहीं था। संयुक्त परिवार में यह विग्रह और उग्र रुप में प्रेमचंन्द का झेलना पड़ा। उनकी कहानियों और अन्य रचनाओं में भी उनके प्रारम्भिक जीवन के इन प्रभावों का वर्णन मिलता है।

इतना ही नही; प्रेमचंद की अपने युग में देश की आजादी की लड़ाई, का भी सामना करना पड़ा। वे इसमें बुरी तरह उलझ गए। उनके प्रारम्भिक रचना काल के समय ही देश मैं सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक चेतना जागृत हो रही थी। तत्कालीन परिस्थितियों का वर्णन करते हुए डॉ. मदन लाल 'मधु' लिखते हैं-

''बीसवीं शताब्दी के आरम्भ से 1912 की अवधी को लेखक के रुप में प्रेमचन्द के विकास की भी पहली अवस्था माना जा सकता है। प्रेमचन्द की तरुणावस्था के समय भारत में जो जागृति आ रही थी वह मुख्यत: सामाजिक और सांस्कृतिक थी। पश्चिमी शिक्षा, नये दृष्टिकोणों,प्राविधिक और वैज्ञानिक प्रगति के फलस्वरुप पुरानी रुढ़ियाँ और अंधविश्वास टूट रहे थे तथा समाज सुधार के बहुत से कार्य हो रहे थे। इसलिये प्रेमचन्द की मानसिक चेतना के विकास को भी समाज-सुधार की ऐसी प्रवृतियों ने ही अधिक प्रभावित किया। ''[12]

डॉ. मधु की मान्यता है कि भारत के तत्कालीन समाज सुधारक युग का प्रभाव प्रेमचंद पर भी पड़ा। 1916 से 1935 तक की अवधि को हम मोटे तौर पर भारतीय स्वतंत्रता-संग्राम की नेतृत्वकारी संस्था के रुप में इंडियन नेशनल कांग्रेस एक वास्तविक जुझारु संस्था बनी, वह विराट जन-आन्दोलन के क्षेत्र में उतरी उसने अपने संघर्ष की एक सुनिश्चित नीति बनायी, वह सारे देश में राष्ट्रीय चेतना लाने में सफल हुई, उसने राजनीतिक संघर्ष के अनूठे उपायों से सारी दुनिया को शक्ति किया और सद्भावनापूर्ण लोगों की सहानुभूति प्राप्त की। इस संघर्ष में मोहनदास कर्मचन्द गाँधी जी की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण रही।

1920 का असहयोग-आंदोलन असफल रहा और इसी प्रकार एक दशक बाद यानी 1930 में फिर काँग्रेस और गाँधी जी के नैतृत्व में आरम्भ होने वाला असहयोग आंदोलन भी साम्राज्यवादी सरकार के अत्याचारों और बातचीत को लम्बा करके मामले को लटकाने तथा अपने लिये उपयुक्त अवसर पाने और शक्ति बटोरकर प्रहार करने की छल-नीति तथा अन्य कई कारणों से 1934 में असफल हो गया। फिर भी इस आंदोलन ने 1920 के आंदोलन की तुलना में कही अधिक राष्ट्रीय चेतना, अनुशासन, व्यापकता और ध्येय का परिचय दिया। पुरुषों ने ही नहीं नारियों और बच्चों तक ने इसमें भाग लिया। नारियों का योगदान तो विशेषत: उल्लेखनीय था। देश के एक कोने से दूसरे कोने तक और लगभग सभी वर्गों और श्रेणियों के लोग इस आंदोलन में खिंच आये थे।

सजग नागरिक और सजग लेखक प्रेमचंद इतनी बड़ी राष्ट्रीय हलचल में मूक या उदासीन नहीं रह सकते थे। वह अपनी लेखनी की सारी शक्ति राष्ट्रीय चेतना और स्वतंत्रता-संघर्ष को अर्पित कर 'रंगभूमि' 'गबन' और 'कर्मभूमि', जैसे उपन्यास एवं समर-यात्रा जैसी कहानियाँ रच रहे थे, अपने लेखों द्वारा देश में जागृति ला रहे थे और खुद जेल भी जाना चाहते थे।

1.2.2.2. ग्रामीण परिवेश तथा निम्न मध्य वर्ग का प्रभाव

प्रेमचंद पर उनके ग्रामीण परिवेश एवं निम्न मध्य वर्ग का पड़नेवाले प्रभाव को लेकर डॉ. मदन लाल 'मधु' उल्लेख करते है-

प्रेमचंद का बचपन और अधिक तर जीवन गाँवों और छोटे नगरों में बीता। गाँवों और किसानों-जमींदारों तथा निम्न मध्य वर्ग के जीवन की उन्हें कहीं अधिक अच्छी जानकारी थी।

प्रेमचंद भारतीय किसानों के जीवन का राई-रत्ती हाल जानते थे, जो भारत के वास्तविक जीवन का प्रतिनिधित्व करते थे। उनके जीवन के चित्रण में प्रेमचंद को स्वभावत: अनुपम सफलता मिली और उन्होंने हिंदी साहित्य में साधारण किसान नायकों को प्रस्तुत करके अपने जनवाद का परिचय दिया। उन्होंने किसानों के जीवन पर 'प्रेमाश्रम' और गोदान जैसे विराट कथापट वाले उपन्यास रचे और उनके जीवन के उजले और धुँधले पहलू, उनके सभी गुण-दोष दिखायें।

प्रेमचंद भारतीय गाँवों और वहाँ के जीवन, किसानों की जिंदगी आदि से न केवल परिचित थे बल्कि स्वयं भी उसी वातावरण में पले एवं बड़े हुए थे। उनकी रचनाओं पर इसका प्रभाव देखने की मिलता हैं।

1.2.3. साहित्य के रुप एवं प्रेमचंद के साहित्य :

आधुनिक हिंदी साहित्य का आरंभ सन् 1900 से माना जाता है। हिंदी साहित्य क्षेत्र में आधुनिक काल की महत्वपूर्ण घटना यह है कि इस काल में गद्य का विकास हुआ। इसके पहले गद्य साहित्य का प्रचलन नहीं था किन्तु आधुनिक काल की युगीन परिस्थितियों, आवश्यकताओं तथा मान्यताओं की अभिव्यक्ति के लिए गद्य की आवश्यकता का अनुभव किया गया। अंग्रेजी ने देशी भाषा को जानने के लिए तथा ईसाई धर्म के प्रचार के लिए गद्य का विकास किया। प्रारंभ में गद्य का स्वरुप स्थिर न हो सका था। उसमें कहीं फारसी शब्दों की बहुलता रहती थी, कहीं संस्कृतनिष्ठ शब्दों की। राजा शिवप्रसाद 'सितारे हिन्द', हिन्दी के समर्थक हुए। लल्लू लाल तथा सदल मिश्र भी फारसी शब्द प्रधान गद्य का स्वरुप स्थिर न हो सका था। उसमें कहीं फारसी शब्दों की बहुलता रहती थी, कहीं संस्कृतनिष्ठ शब्दों की। राजा शिवप्रसाद 'सितारे हिन्द' हिन्दी के समर्थक थे बाद में वे फारसी शब्दों के समर्थक हुए। लल्लू लाल तथा सदल

मिश्र भी फारसी शब्द प्रधान गद्य लिखते थे। राजा लक्ष्मण सिंह प्रारंभ से ही शुद्ध संस्कृतनिष्ठ गद्य लिखने के पत्रपाती थे। इस प्रकार अब तक गद्य का कोई शुद्ध स्वरुप निश्चित न हो सका था। भारतेन्दु के आगमन से गद्य की भाषा के स्वरुप में स्थिरता आई। उन्होंने भाषा के लिए मध्यम मार्ग अपनाया तथा गद्य साहित्य में उर्दू, संस्कृत और अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग किया। भारतेन्दु के आविर्भाव से गद्य के विविध रुपों -उपन्यास, कहानी, निबंध और नाटक आदि का उद्‌भव और विकास हुआ।

प्रेमचंद के सर्जनात्मक साहित्य पर आलोकपात करने से साहित्य के विविध विधाओं में देनेवाले योगदान का पता चलता हैं। वे बहुमुखी व्यक्तित्व के अधिकारी थे। वे मुख्यत: कथाकार के रुप में प्रसिद्ध हैं। लेकिन साथ ही साथ उन्होंने साहित्य की अन्य विधा निबंध, नाटक, अनुवाद, पत्र साहित्य आदि पर भी अपनी कलम चलाई।

1.2.3.1 निबन्धकार प्रेमचंद :

प्रेमचंद के निबंध का एक संग्रह 'कुछ विचार' (1939 ई०) नाम से प्रकाशित हुआ था। उन्होंने साहित्य के स्वरुप और उद्देश्य तथा कहानी और उपन्यास के कलात्मक-संघटन के संबंध में ही नहीं, भाषा और लिपि के सम्बन्ध में भी अपनी विचार किया है। उनके महत्वपूर्ण निबंध क्रमश: निम्नलिखित हैं:-

साहित्यसम्बंधी :- साहित्य का उद्देश्य, जीवन में साहित्य का स्थान, साहित्य का आधार, साहित्य में बुद्धिवाद, संग्राम में साहित्य, साहित्य में समालोचना, साहित्य और मनोविज्ञान, फिल्म और साहित्य की नयी प्रकृति, अन्तरप्रान्तीय साहित्यिक आदान-प्रदान, साहित्यिक उदासीनता, साहित्य में ऊँचे-ऊचे विचार, रुसी साहित्य और हिंदी।

भाषासम्बन्धी :- राष्ट्रभाषा हिंदी और उसकी समस्याएँ, कौमी भाषा के विषय में कुछ विचार, हिन्दी-उर्दू की एकता, 'उर्दू' , 'हिंदी' , और 'हिन्दुस्तानी'।

लिपिसम्बन्धी :- 'शिरोरेखा क्यों हटानी चाहिये।'

कहानीसम्बन्धी :- कहानी कला (1,2,3), हिंदी गल्पकला का विकास, दन्त-कथाओं का महत्व एक प्रसिद्ध गल्पकार के विचार, प्रेमविषयक गल्पों से अरुचि।

उपन्याससम्बन्धी :- उपन्यास, उपन्यास का विषय।

शेष निबंध सामयिक साहित्यिक गतिविधियों से सम्बन्ध हैं, जिनमें समकालीन 'अँग्रेजी ड्रामा', 'रोमेंरोलाँ की कला' 'सिनेमा और जीवन', 'समाचार पत्रों के मुफ्त खोर पाठक', 'जापान में पुस्तकों का प्रचार', 'रुचि की विभिन्नता' आदि अनेक विषयों पर स्फुट विचार प्रकट किये गये हैं। साहित्य संबंधी निबंध सैद्धान्तिक विषयों को लेकर नहीं लिखे गये हैं।

1.2.3.2. अनुवादक प्रेमचन्द :

प्रेमचंद एक सफल अनुवादक भी थे। उन्होंने जिन पाश्चात्य लेखकों को पढ़ा था और जिनसे प्रभावित हुए थे, उनकी कृतियों का अनुवाद भी किया था। रुस के महान-लेखक टॉल्स्टाय के कथा-साहित्य ने उन्हें आकृष्ट किया तो उन्होंने उनकी कहानियों का अनुवाद 'टॉल्स्टाय की कहानियाँ' (1923 ई०) नाम से प्रस्तुत कर दिया। इसी प्रकार फ्रांस के प्रसिद्ध उपन्यासकार अनातोले फ्रांस की प्रसिद्ध कृति 'थायस' का अनुवाद उन्होंने 'अहंकार' (1923 ई०) नाम से किया। गाल्सवर्दी के तीन नाटकों - 'स्ट्राइक', दि सिल्वर बॉक्स और 'जस्टिस' का अनुवाद उन्होंने क्रमश: 'हड़ताल' (1930 ई०), 'चाँदी की डिबिया' (1931 ई०) और 'न्याय' (1931 ई०) नाम से किया।

बर्नार्ड शॉ के नाटकों की धूम मचने पर उनके एक नाटक 'वैक टु मेथ्यूसेलह' का अनुवाद 'सृष्टि का आरम्भ' (1939 ई०) नाम से किया। प्रारम्भ में उन्होंने जार्ज इलियट के एक उपन्यास 'साइलस मार्नर' (1816 ई०) का अनुवाद 'सदासुख' (1920 ई०) नाम से किया था। रतननाथ सरशार कृत 'फ़सान-ए-आजाद' का अनुवाद दो भागों में 'आजाद कथा' (1927 ई०) नाम से प्रस्तुत करके आपने अपनी विनोद-वृत्ति का परिचय हिंदी-साहित्य की बहुत पहले ही दे दिया था।[13] वस्तुत : उनकी मौलिक रचनाएँ इतनी लोकप्रिय हुई कि अनुवादों की ओर हमारा ध्यान ही नहीं गया।

1.2.3.3. नाटककार प्रेमचन्द :

प्रेमचन्द जी ने 'संग्राम' (1923 ई०), 'कर्बला' (1924 ई०), और 'प्रेम की वेदी' (1933 ई०) शीर्षक तीन नाटकों की भी रचना की। उनके ये नाटक नाटक की अपेक्षा वस्तुत : संवादात्मक उपन्यास ही बन गये थे।

1.2.3.4. कथाकार प्रेमचंद :

हिंदी कथा-साहित्य के क्षेत्र में प्रेमचंद युग-प्रवर्तक हैं। उन्होंने जीवन संग्राम में सौन्दर्य के दर्शन किये। उन्होंने सुप्त जन-चेतना को जगा दिया। उन्होंने साहित्यकार के महान् उत्तरदायित्व को समझा और यथाशक्ति उसका निर्वाह किया। उन्होंने घोषणा की ''जिस साहित्य से हमारी सुरुचि न जागे, आध्यात्मिक और मानसिक तृप्ति न मिले, हममें शक्ति और गति न पैदा हो, हमारा सौन्दर्य-प्रेम न जाग्रत हो, जो हममें सच्चा संकल्प और कठिनाइयों पर विजय पाने की सच्ची दृढ़ता न उत्पन्न करे, वह आज हमारे लिए बेकार है, वह साहित्य कहाने का अधिकारी नहीं। उन्होंने सच्चे साहित्य का सृजन किया।

1.2.3.4.1 उपन्यास :

प्रेमचंद ने हिंदी-जगत को -

'सेवासदन' (1918 ई०),'वरदान' (1921 ई०), 'प्रेमाश्रम' (1921 ई०),'रंगभूमि' (1925 ई०),

'कायाकल्प' (1926 ई०),'निर्मला' (1927 ई०), 'प्रतिज्ञा' (1929 ई०),

'गबन' (1931 ई०), 'कर्मभूमि' (1932 ई०),'गोदान' (1936 ई०), 'मंगलसुत्र'- कुल ग्याराह महत्वपूर्ण उपन्यास दिये। इन सभी उपन्यासों में कलाकार प्रेमचंद ने युग-धारा के साथ चलने का प्रयत्न किया है। सभी उपन्यास वर्तमान जीवन की समस्याओं से सम्बन्ध हैं।

1.2.3.4.2. कहानियाँ :

प्रेमचन्दजी के कुल नौ कहानी-संग्रह प्रकाशित हुए हैं। जो हैं क्रमशः- 'सप्तसरोज', 'नवनिधि', 'प्रेमपूर्णिमा','प्रेमपचीसी','प्रेम-प्रतिमा','प्रेम-द्वादशी','समरयात्रा','मानसरोवर भाग 1:2', और 'कफन'।

इन कहानियों में 1907 से लेकर 1936 ई० तक के हिंदी-प्रदेशीय जन-जीवन की प्रगति का संवेदनशील इतिहास प्रतिबिम्बित हुआ है। विषय की दृष्टि से ये कहानियाँ सामाजिक एवं राजनीतिक प्रगति से ही सम्बन्ध हैं। अधिकांश कहानियाँ ग्राम्य-जीवन की सुन्दर झाँकियाँ हैं। 'प्रेम द्वादशी' की भूमिका में प्रेमचंदजी ने लिखा है-''जिस देश के 80 फीसदी मनुष्य गाँवों में बसते हों, उनके साहित्य में ग्राम्य-जीवन ही प्रधानरुप से चित्रित होना स्वाभाविक है। उन्हीं का सुख राष्ट्र का सुख, उनका दुःख शब्द का दुःख और उन्हीं की समस्याएँ राष्ट्र की समस्याएँ हैं।'' प्रेमचंद के समग्र कथा साहित्य का यही मूलमंत्र है।[15]

1.2.3.5. पत्र-साहित्य :

प्रेमचंद के पत्रों को संकलित, संपादित तथा 'चिट्ठी-पत्री' 1 और 'चिट्ठी-पत्री' 2 शीर्षक से प्रकाशित करके श्री अमृतराय और मदनगोपाल ने हिंदी-साहित्य का बड़ा उपकार किया है। पहले खण्ड ('चिट्ठी-पत्री' 1) में वे पत्र संगृहीत हैं जो प्रेमचंद ने 'जमाना' के संपादक मुंशी दयानरायन निगम को लिखे थे। दूसरे खण्ड (चिट्ठी-पत्री, 2) में अन्य लोगों को लिखे गये पत्र संकलित हैं। प्रेमचंदजी के पत्र बड़े ही आत्मीयतापूर्ण हैं। पत्रों में उन्होने अपने को अधिक सहज रुप में व्यक्त किया है।

1.3. भाषा-शैली :

प्रेमचंद उर्दू से हिन्दी में आए। इसलिए स्वाभाविक था कि उन पर आरंभ में उर्दू के पूर्ववर्ती कथाकारों की गद्य-शैली का प्रभाव पड़ता। उनकी आरंभिक रचनाओं पर रतननाथ सरशार के गद्य का प्रभाव लक्षित किया गया है। उर्दू की बनावट और अलंकृति से युक्त अन्य आख्यायिकाओं के गद्य का प्रभाव भी उनकी तत्कालीन रचनाओं पर देखा जा सकता है। श्री हंसराज रहबर के अनुसार 'शुरु में उनकी (उर्दू) भाषा कठिन और शैली बोझिल थी। वाक्य विन्यास की चतुरता और कला कौशल दिखाने का लोभ अधिक था।' [16]

पर धीरे-धीरे यह प्रवृति दूर होती गई और जीवन से जुड़े हुए सहज तथा सजीव गद्य का रुप उनकी रचनाओं में निखरता गया। उनके आरंभिक हिंदी गद्य में भी समीक्षकों ने अनेक त्रुटिया दिखाई हैं। [17] पर आगे चलकर ये दोष दूर हो गए और उन्होंने अत्यंत समर्थ कथात्मक गद्य की प्रतिष्ठा की। प्रेमचंद ने अपनी भाषा को हिन्दुस्तानी भाषा कहा है। दूसरी भाषा के शब्दों को उन्होंने अपनी भाषा में इस तरह बारीकी से मिलाया है कि कहीं भी कृत्रिमता नही आ पाई हैं। प्रेमचंद के उपन्यास की भाषा सरल, प्रसंगानुकूल, अर्थगर्भित मुहावरेदार और आकर्षक शब्दावली से परिपूर्ण है।

प्रेमचन्द की कथात्मक और वर्णनात्मक शैली में व्यक्ति, वस्तु और क्रिया का प्रत्यक्षीकरण कराने का असाधारण गुण है। उन्होंने वस्तुनिष्ठ और भावमय- दोनों प्रकार के वर्णन किए हैं। यद्यापि प्रेमचंद मुख्यत: एक वस्तुनिष्ठ लेखक हैं और उनकी प्रधान शैली भी विवेक नियंत्रित ही है प्रसंग और अवसर के अनुरुप उनकी शैली संवेगनिष्ठ भी हो जाती है। वे बहुत सीधे सादे शब्दों द्वारा भी भावमयता व्यक्त करते हैं और काव्यात्मक पदावली द्वारा भी। अलंकार, मुहावरों के प्रयोग के साथ ही व्यंग्यात्मक शैली का प्रयोग भी देखने को मिलता हैं।

1.4. निष्कर्ष :

प्रेमचंद एक स्वतंत्र चेता, उदारमना, दायित्वपूर्ण, देशप्रेमी साहित्यकार रहे। उनके जीवन के सारे प्रयास, सारी चिंता, उठा-पटक, भाग-दौड़ का मूल उद्देश्य था साहित्य और स्वदेश की सेवा। अपनी अस्वस्थता और पारिवारिक जिम्मेदारियों ने उन्हें स्वाधीनता-संग्राम में सक्रिय होने का अवसर न दिया, परंतु अपनी लेखनी से जनमानस को सजग, शिक्षित और उद्वेलित करने में उन्होंने कोई कसर न छोड़ी। पत्रकारिता से जुड़ने का सबब भी देश-सेवा ही रहा। भाषा और साहित्य का एक अखिल भारतीय रुप उनका सपना था। भाषा में हिंदुस्तानी की, जो सरल, बोलचाल के करीब हो, उन्होंने वकालत की। भारतीय साहित्य की पहचान के लिए 'भारतीय साहित्य परिषद' को समर्थन देते हुए अपने हंस को उसका मुखपत्र बनाया।

राष्ट्रभाषा के माध्यम से अन्य भारतीय भाषाओं के साहित्य से परिचित होने और भारतीयता की पहचान बनाने के लिए 'अनुवाद मंडल' की योजना बनायी। यह सब श्रम उन्होंने उस समय किया, जब वे बहुत अस्वस्थ थे।

एक ऐसा जीवटवाला इन्सान, जो अपनी छोटी-सी-उम्र में कलम पकड़ता है, हर मुश्किल से जूझते हुए अंतिम समय तक अपनी कलम को धार देता रहा, जिससे अनुदारता, संकुचित वृत्ति, स्वार्थ, कदाग्रह और आपसी कलह को काटने की कोशिश में लगा रहा। एक ऐसा साधारण व्यक्ति,जो असाधारण कहे जानेवाले गुणों से लैस था। चरैवेति का साकार रुप है प्रेमचंद का जीवन। [18]

निष्कर्षतः हिंदी साहित्य जगत की प्रेमचंद एक अमर कथाकार हैं।

1.5. संदर्भ :

1. हिंदी उपन्यास-(सं) प्रिय दर्शिनी, पृ-217
2. प्रेमचंद : एक अध्ययन-राजेश्वर गुरु, पृ- 268
3. www. ignca. nic. in (प्रेमचंदः जीवन परिचय)
4. www. ignca. nic. in (प्रेमचंदः जीवन परिचय)
5. साइकोलाजी-नोरमेन-एल. एम. पृ-569
6. प्रेमचंद और उनका युग-डॉ० रामविलास शर्मा, पृ-27
7. www. ignca. nic. in (प्रेमचंदः जीवन परिचय)
8. प्रेमचंद और उनका युग-डॉ० रामविलास शर्मा, पृ-27
9. साहित्यिक निबंध-डॉ० गणपतिचंद गुप्त, पृ० 153
10. प्रेमचंद और उनका युग- डॉ० रामविलास शर्मा, पृ० 19
11. गद्यपथ-सुमित्रानंदन पंत, पृ- 147
12. गोर्की और प्रेमचंद दो अमर प्रतिमायें लेख मदनलाल 'मधु' , पृ-120
13. हिंदी का गद्य साहित्य - डॉ० रामचन्द्र निवारी, पृ-685
14. कुछ विचार-प्रेमचंद, पृ-9-10
15. हिंदी का गद्य साहित्य- डॉ० रामचन्द्र तिवारी, पृ-694
16. प्रेमचंद-जीवन, कला और कृतित्व- 'हंसराज रहबर', पृ-251
17. हिंदी गद्य शैली का विकास-डॉ० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा, पृ-116-118
18. प्रेमचंद का रचना संसार (पुर्न मूल्यांकन) डॉ० सुशीला गुप्ता, पृ-175